IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

श्रीमद्भगवद्गीता में निहित उद्देश्यों का वर्तमान शिक्षा में प्रासंगिकता : एक सर्वेक्षणात्मक अध्ययन

राधा रानी सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
शिक्षाशास्त्र विभाग
आर्य कन्या पी0जी0 कालेज,
प्रयागराज

सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन की सर्वांगीण समस्याओं का जैसा व्यावहारिक और सहज समाधान प्रस्तुत किया गया है वैसा विश्व के किसी भी अन्य शास्त्र में दुर्लभ है। वर्तमान भारतीय परिवेश में, जबकि सर्वत्र भ्रष्टाचार और अनाचार का बोलबाला है, निष्काम कर्मयोग की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। भ्रष्टाचारमुक्त समाज के निर्माण मं निष्काम कर्मयोग का आदर्श आज भी समीचीन है। शारीरिक पक्ष भले ही मनुष्य बाह्य साधनों से सम्पूर्ण करता हो परन्तु आत्मबल और मन की तरंगों का सात्विकीकरण करने के लिए जो शिक्षा मात्र ज्ञान तक ही नहीं रहती वरन् स्वयं के अनुभव को आधार मानती है और वह केवल तभी प्राप्त की जा सकती है जब व्यक्ति स्वयं को एकाग्र करने की क्षमता प्राप्त कर लें और जैसे ही यह क्षमता विद्यार्थी को प्राप्त होती है तो उसका बाह्य या स्कूली शिक्षा से सीधा तारतम्य स्थापित हो जाता है फिर वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में अपने विवेक की क्षमता का प्रयाग कर लेता है।

श्रीमद्भगवद्गीता के जीवन–मूल्यों से शिक्षा व्यवस्था को अपने सम्पूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलती। आधुनिक युग में शिक्षा के सिर्फ लौकिक उद्देश्यों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता रहा है। अतः बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास न होकर एकांगी विकास ही होता है। अतः आधुनिक युगीन मनुष्य, मनुष्य न रहकर मशीन बनता चला जा रहा है। वह अनेकानेक मनोविकारों से ग्रस्त होता चला जा रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सबको महत्ता प्रदान करती है। इसी कारण कहा गया है कि श्रीमद्भगवद्गीता के जीवन–मूल्य आधुनिक भारतीय शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्यों के निर्धारण एवं प्राप्ति में अब भी सहायक है।

गीता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना ही सिखाना नहीं ह, अपितु अन्तरात्मा की आवाज को सुनने, समझने एवं उनका अनुसरण करने की योग्यता प्रदान कराना है। वर्तमान शिक्षा के शिक्षण उद्देश्य नितान्त एकांगी है जो कि एकमेव भौतिक उन्नति पर बल देते हैं तथा सच्चे विकास, अधिक प्रासंगिक उद्देश्य की सर्वथा उपेक्षा कर देते है। अतः शैक्षिक उद्देश्यों व मानव मूल्यों की दृष्टिकोण से श्रीमद्भगवत गीता अपने आपमें श्रेष्ठ ग्रन्थ है, जिससे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के साथ–साथ विद्यार्थियों को भी कुशल एवं उच्च कोटि का नागरिक बनाया जा सकता है।

श्रोमद्भगवद्गीता महाभारत के भीष्मपर्व का एक अंग है। गीता का उपदेश 'भीष्मपर्व' के 25वें अध्याय से आरम्भ होकर 42वें अध्याय तक चलता है। जिस प्रकार कुरुक्षेत्र के महासमर में भगवान् ने दानों सेनाओं के मध्य उपदेश दिया ठीक उसी प्रकार महाभारतकार ने गीता को महाभारत के मध्य में स्थान देकर उसे विशेष महत्त्व प्रदान किया है। इस सन्दर्भ में विनोबा का यह कथन उचित ही है कि– ''गीता महाभारत के मध्यभाग में ऊँचे दीपक की तरह है जिसका प्रकाश पूरे महाभारत को आलोकित कर रहा है।''[1]

श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन की सर्वांगीण समस्याओं का जैसा व्यावहारिक और सहज समाधान प्रस्तुत किया गया है वैसा विश्व के किसी भी अन्य शास्त्र में दुर्लभ है। गीता के बहुआयामी कथ्य के स्पष्टीकरण के लिए विभिन्न व्याख्याओं का विभिन्न दृष्टिकोणों से जो प्रणयन हुआ उनमें से अधिकांश व्याख्याएँ किसी एक सिद्धान्त की श्रेष्ठता सिद्ध करने के दृष्टिकोण से लिखी गयी हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता न केवल धर्मशास्त्र अपितु आचार शास्त्र भी है। आचार सम्बन्धी समस्याओं का जितना सुन्दर निर्वचन गीता में है संसार के किसी अन्य शास्त्र में दुर्लभ है।

श्रीमद्भगवद्गीता का अमर सन्देश सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। भारतीय विचारधारा के निर्माण में गीता की शिक्षा की महती भूमिका रही है। इसके द्वारा मानव समाज को दी गयी धार्मिक सहिष्णुता की शिक्षा आज भी अनुकरणीय है। यह आद्योपान्त धार्मिक सहिष्णुता की भावना से ओत–प्रोत है जो हिन्दुत्व की प्रमुख विशेषता है। इसका उपदेशक न तो किसी धार्मिक आन्दोलन का नेता है और न ही उसने किसी धार्मिक सम्प्रदाय की स्थापना किया है। इसका उपदेश किसी सम्प्रदाय–विशेष के लिए भी नहीं है। उसकी शिक्षा सार्वभौम है, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश–काल परिस्थिति की सीमाओं से परे है। गीता की सभी उपासना–पद्धतियों के साथ सहानुभूति है। इसका उपदेशक स्पष्टतः यह घोषित करता है कि, 'जो भक्त जिस देवता को श्रद्धा से पूजना चाहता है, मैं उसी श्रद्धा को उसी में दृढ़ करता हूँ और वह उसी से अपेन इच्छित भोगों को प्राप्त करता है।' वह पुनः घोषित करता है कि, 'श्रद्धा से युक्त होकर जो अन्य देवताओं को पूजते हैं वे भी मुझे ही पूजते हैं, यद्यपि उनकी यह पूजा विधिपूर्वक नहों है।' इस प्रकार आज के सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश में, जहाँ मजहब एवं ईश्वर के नाम पर लोग एक दूसरे के खून के प्यासे दिखाई देते हैं, गीता की धार्मिक सहिष्णुता, पंथ– सम्प्रदाय–निरपेक्षता का दर्शन और भी प्रासंगिक हो जाता है।

गीता के निष्काम कर्मयोग की उपयोगिता आज भी निर्विवाद है। कर्म को अकर्म से श्रेयस्कर बताते हुए निष्काम भाव से कर्तव्य–कर्म के सम्पादन का आदेश गीता की अपनी सार्वभौम विशेषता है। वर्तमान भारतीय परिवेश में, जबकि सर्वत्र भ्रष्टाचार और अनाचार का बोलबाला है, निष्काम कर्मयोग की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। उल्लेखनीय ह कि राजनीति और प्रशासनिक सेवाएँ, समाज–सेवा के साधन हुआ करती हैं, किन्तु आज इनकी विश्वसनीयता सन्दिग्ध है और समाज–सेवा का साध्य अप्रात्य हो गया है। यदि कम से कम हमारा वर्तमान नेतृत्व और सेवा–संवर्ग ही निष्काम भाव से योजनाओं का निर्माण एवं कार्यान्वयन करें तो लोक–सेवा का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है, स्वातन्त्र्य आन्दोलन के सपने को साकार किया जा सकता है और भ्रष्टाचार की देशव्यापी समस्या से देश मुक्त हो सकता है। तात्पर्य यह है कि भ्रष्टाचारमुक्त समाज के निर्माण में निष्काम कर्मयोग का आदर्श आज भी समीचीन है।

पुनः गीता का लोकसंग्रह का आदर्श प्रागैतिहासिक काल से ही राज्य के लोककल्याणकारी स्वरूप की याद दिलाता है। गीता पुरुषोत्तम एवं मुक्तात्माओं को लोककल्याण हेतु प्रयासरत दिखाकर मानवमात्र को लोककल्याण हेतु प्रेरित करती है। गीता ने इस सन्दर्भ में आदर्श वर्णव्यवस्था के रूप में स्वधर्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करके ऊँच–नीच के भेदभाव और अनावश्यक प्रतियोगिता को दूर करने का आदेश दिया। इसका यह कहना आज भी प्रासंगिक है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति हर कार्य नहीं कर सकता, अतः उसे अपनी योग्यतानुसार समाज के उत्तरदायी सदस्य की हैसियत से सामाजिक कार्यों का सम्पादन करना चाहिए। गीता द्वारा प्रतिपादित यह वर्णव्यवस्था परिवर्तित रूप में आज भी विद्यमान है। वर्तमान में सेवा–संवर्ग के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणियों में विभाजन पर गीता की चातुर्वर्ण्यवस्था की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। गीता द्वारा गुण और योग्यता के आधार पर व्यक्ति को सामाजिक प्रतिष्ठा की पहचान का सन्देश आज के युग की माँग ही है। आधुनिक युग में जबकि लोग अपने कर्तव्यों को भूलकर अधिकारों के लिए लड़रहे हैं, गीता द्वारा अपने वर्णगत कर्मों (स्वधर्म) के पालन का आदेश और भी समीचीन हा जाता है। इसने अति प्राचीन काल से ही भारतीय समाज को एकता के सूत्र में बाँधे रखा और लोगों में कर्तव्य की चेतना जागृत किया। लोकसंग्रह, स्वधर्म तथा निष्काम कर्मयोग के सिद्धान्तों द्वाराजो स्वार्थ और परार्थ के समन्वय पर बल दिया गया उसे आज भी कौन–सा नैतिक दर्शन अस्वीकार करने का दुस्साहस करेगा?

समाज के निरन्तर बदलते रहने की प्रक्रिया के कारण निश्चय ही तत्कालीन परिस्थितियाँ आज से भिन्न रही होंगी और इस परिप्रेक्ष्य में गीता का सार उस समय के लिए सत्य मानने में कोई असहमति नहीं कर सकता परन्तु गीता कोई परिस्थिति अथवा काल या मानव के परिवर्तन के साथ बदल जायेगो ऐसा भी असम्भव प्रतीत होता है क्योंकि गीता अपने में व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास करने में विश्वास रखती है। व्यक्ति का विकास ज्ञानी पुरुषों के द्वारा मुख्यतः दो पक्षों – शारीरिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु अपने शरीर एवम् मस्तिष्क को स्वस्थ बनाये रखने में जो परिवार, विद्यालय व समाज की सहायता से क्रिया–प्रतिक्रिया के बल पर प्राप्त किया जाता है एवं जो अपने मन और आत्मा के बल पर स्वयं को जानने की प्रक्रिया की जाती है। पहला पक्ष भले ही मनुष्य बाह्य साधनों से सम्पूर्ण करता हो परन्तु आत्मबल और मन की तरंगों का सात्विकीकरण करन के लिए जो शिक्षा मात्र ज्ञान तक ही नहीं रहती वरन् स्वयं के अनुभव को आधार मानती है और वह केवल तभी प्राप्त की जा सकती है जब व्यक्ति स्वयं को एकाग्र करने की क्षमता प्राप्त कर लें और जैसे ही यह क्षमता विद्यार्थी को प्राप्त होती है तो उसका बाह्य या स्कूली शिक्षा से सीधा तारतम्य स्थापित हो जाता है फिर वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की गति और सीमा को जानने और पहुँचन में अपने विवेक की क्षमता का प्रयोग कर लेता है। व्यक्ति का ऐसा विकास किसी एक विशेष समय के लिए नहीं वरन् आद्यन्त तक सभी को स्वीकार है और इसलिए गीता आज के परिप्रेक्ष्य में भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी तब थी क्योंकि मनुष्य का उच्च स्तर पर विकास तभी माना जा सकता है जब उसका आत्मीय निर्देश उसकी मनोदशा को सहर्ष स्वीकार हो अथवा जीवन में द्वन्द्व की स्थिति लगातार बनी रहती हैं अतः आज की शिक्षा में भी जब तक हम अन्तःकरण का शुद्धिकरण और बाह्य परिस्थितियों की आवश्यकता को जोड़कर देना शुरू नहीं करेंगे तब तक समाज का उत्थान सम्भव नहीं।

अग्रवाल (1995)[2] ने गीता के उपदेशों का अध्ययन किया और पाया कि 21वीं शताब्दी में गीता के उपदेश अत्यन्त प्रासंगिक है। गीता द्वारा दिये गये सन्देशों को अपनाकर ही हम सामाजिक बुराइयों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं तथा समाज में अच्छे व उपयोगी मूल्यों का निर्माण कर सकते हैं। उन्होंने अपने शोध में यह भी पाया कि आज शिक्षा व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता है। प्रकाश (2003)[3], अध्ययन में पाया कि शिक्षा व शिक्षा संस्थानों की समस्त समस्याओं का समाधान गीता के उपदेशों में निहित है तथा गीता के उपदेश आज अत्यन्त आवश्यक है। योगेश्वर श्री कृष्ण लौकिक और आध्यात्मिक कर्म दोनों का सामान्य महत्त्व देते हैं। यही सनातन धर्म की शिक्षा युगों–युगों से महापुरुषों द्वारा समय–समय पर दी जाती रही है अतएव वर्तमान शिक्षा प्रणाली को केवल भौतिक ज्ञान से नहीं अपितु नैतिक धार्मिक ज्ञान से भी पूर्ति करना होगा। श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएँ केवल हिन्दू धर्म या भारत के लिए ही नहीं वरन् पूरे विश्व के लिए है। वेद व्यास द्वारा रचित श्रीमद्भागवत गीता वस्तुतः प्रतीकात्मक शास्त्र है। गीताकार ने स्वयं ही ''इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते'' कहकर अनुराग रूपी अजुन के भ्रम को दूर किया है। इसकी प्रतीकात्मक व्याख्या केवल वर्तमान के लिए ही नही अपितु भविष्य के लिए भी मार्गदर्शक होगी। समाज राष्ट्र और शिक्षा की सभी समस्याओं का यथोचित समाधान गीता में मिलता है शिक्षा के लिए यह अद्वितीय ग्रन्थ है। मानव मन व्यवहार, बल्कि मूल्यों और मस्तिष्क पर भी प्रभाव डालता है। शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण कार्य लोगों के सामाजिक तंत्र के मूल्यों का प्रसार करना है, नैतिक मूल्यों का प्रसार वैधानिक और गुप्त तरीके, दोनों द्वारा होता है। पाण्डेय (2007)[4], ने अध्ययन में बताया कि गीता में मनुष्य को कर्मयोग के पथ पर चलने की सलाह दी गई है एवं कर्मयोग जीवन को एक वैज्ञानिक आधार देता है तथा गीता के नैतिक एवं शैक्षिक मूल्य सार्वभौमिक व सार्वकालिक है। त्रिपाठी, आयुष्मान (2011)[5] ने अध्ययन में पाया कि श्रीमद्भगवद्गीता के जीवन–मूल्यों से शिक्षा व्यवस्था को अपने सम्पूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता मिलतो। आधुनिक युग में शिक्षा के सिर्फ लौकिक उद्देश्यों पर ही ध्यान केन्द्रित किया जाता रहा है। पारलौकिक या आध्यात्मिक उद्देश्यों को आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने दर्शानुसार कर दिया है। अतः बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास न होकर एकांगी विकास ही होता है। अतः आधुनिक युगीन मनुष्य, मनुष्य न रहकर मशीन बनता चला जा रहा है। वह अनेकानेक मनोविकारों से ग्रस्त होता चला जा रहा है। जब तक शिक्षा व्यवस्था को धर्म की ओर उन्मुख नहीं किया जायेगा तब तक इस समस्या का, स्थायी समाधान असम्भव है। श्रीमद्भगवद्गीता धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सबको महत्ता प्रदान करती है। इसी कारण कारण कहा गया है कि श्रीमद्भगवद्गीता के जीवन–मूल्य आधुनिक भारतीय शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्यों के निर्धारण एवं प्राप्ति में अब भी सहायक है। यादव, दुर्गेश कुमार (2014)[6]. ने अध्ययन के निष्कर्ष में कहा कि गीता के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना ही सिखाना नहीं है, अपितु अन्तरात्मा की आवाज को सुनने, समझने एवं उनका अनुसरण करने की योग्यता प्रदान कराना है। आज के सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश में, जहाँ मजहब एवं ईश्वर के नाम पर लोग एक दूसरे के खून के प्यासे दिखाई देते हैं, श्रीमद्भगवद्गीता की धार्मिक सहिष्णुता, पंथ– सम्प्रदाय– निरपेक्षता का दर्शन और भी प्रासंगिक हो जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता केवल भारत में ही नही वरन् सम्पूर्ण विश्व के लिए कर्त्तव्य शास्त्र का अनूठा ग्रन्थ–रत्न है, इसमें जगद्गुरु के रूप में श्रीकृष्ण के द्वारा शिष्य के प्रतीक रूप में अर्जुन को शिक्षा दी गयी है। मानव जीवन की इतनी उच्च कल्पना एवं कर्त्तव्य का इतना उच्च विश्लेषण अन्यत्र प्राप्त नहीं होता है। गीता स्थायी दर्शन का सबसे स्पष्ट और विस्तार पूर्ण आकलन है। इसका स्थायी महत्त्व भारतवासियों के लिए ही नहीं अपितु मानव मात्र के लिए व सम्पूर्ण मानवता के लिए है। इसमें नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, ज्ञान–अज्ञान, कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य, पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म, स्वधर्म–पराधर्म, सत्य–असत्य, आत्म–ज्ञान, कर्म–ज्ञान तथा अनेक दार्शनिक समस्याओं जैसे प्रकृति–पुरुष, ब्रह्म–ईश्वर, मोक्ष, पुनर्जन्म तथा वर्ण–आश्रम सम्बन्धी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

श्रीमद्भगवदगीता की शिक्षा व शिक्षण का मुख्य लक्ष्य ऐहिक अभ्युदय (भौतिक उन्नति) के साथ–साथ आध्यात्मिक कल्याण करना है। इस दृष्टि से गीता की शिक्षा के उद्देश्यों एवं शिक्षण विधियों की महती उपादेयता है। वर्तमान शिक्षा के शिक्षण उद्देश्य नितान्त एकांगी है जो कि एकमेव भौतिक उन्नति पर बल देते हैं तथा सच्चे विकास, अधिक प्रासंगिक उद्देश्य की सर्वथा उपेक्षा कर देते है। अतः शैक्षिक उद्देश्यों व मानव मूल्यों की दृष्टिकोण से श्रीमद्भगवत गीता अपने आपमें श्रेष्ठ ग्रन्थ है, जिससे वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के साथ–साथ विद्यार्थियों को भी कुशल एवं उच्च कोटि का नागरिक बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 विनोबाः गीताप्रवचन, पृ0 09

2 अग्रवाल, एस0पी0 (1995). द एम्पार्टेन्स ऑफ यूटीलाइजिंग द गीता टु साल्व प्राबलम्बस ऑफ 21वीं सेन्चुरी, फिलॉसफी रिसर्च जनरल, नई दिल्लीः आई.सी.पी.आर., जनवरी से मार्च, 1995, पृ0 20–25।

3 पकाश, सुमंगल (2003). मेसेज ऑफ भगवत्गीता टु कन्टेम्परेरी वर्ल्ड, फिलॉसफी रिसर्च जनरल, नई दिल्ली : आई.सी.पी.आर., अप्रैल से जून, 2003, पृ0 42–48।

4 पाण्डेय, आर0के0 (2007). द गीता एण्ड इट्स गास्पेल्स, फिलॉसफी रिसर्च जनरल, नई दिल्ली : आई.सी.पी.आर., जनवरी से मार्च, 2007, पृ0 28–32।

5 त्रिपाठी, आयुष्मान (2011). गीतादर्शन और अस्तित्ववाद दर्शन का जीवन मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन, अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध, इलाहाबाद : नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय।

6 यादव, दुर्गेश कुमार (2014). भारतीय मूल्यों के पुनर्स्थापना में श्रीमद्भगवद्गीता में निहित शैक्षिक एवं नैतिक विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन, अप्रकाशित लघुशोध प्रबन्ध, इलाहाबाद : नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय।